'ऐतरेय ब्राह्मण' की कथा

[बचपनसे नाम-जप]

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

हारीत ऋषिके वंशमें एक ऋषि हुए। स्कन्दपुराणने उनका नाम माण्डूकि दिया है। उनकी पत्नीका नाम इतरा था। इतरामें वे सभी सद्गुण विद्यमान थे जो एक साध्वीमें हुआ करते हैं[१]। हारीत ऋषि भक्तिके महान् आचार्य थे। उनकी वंशपरम्परामें होनेके कारण दम्पतिमें सहज ही भक्तिकी भावना लहराती रहती थी। पति एवं पत्नी दोनों अनुकूल और पावन जीवन बिता रहे थे। उनके जीवनमें एक ही कमी थी, वह कमी थी संतानका न होना। साध्वी इतरासे कोई संतान नहीं हो रही थी। इसलिये ऋषिने घोर तपका आश्रय लिया। फलस्वरूप उनके घरमें एक पुत्रका जन्म हुआ। जिसे माँके नामपर सब लोग 'ऐतरेय' कहकर पुकारते थे। महान् वंशमें महान् तपके प्रभावसे जिस शिशुने जन्म लिया, वह भी महान् ही था। ऐतरेय ब्राह्मणका आगे चलकर यही द्रष्टा हुआ। इसके अतिरिक्त बिना पढ़े ही ऐतरेयमें सारे वेद प्रतिभासित हो गये। ***'होनहार बिरवानके होत चीकने पात'***—इस कहावतके अनुसार ऐतरेयमें बचपनसे ही चमत्कारपूर्ण घटनाएँ घटने लगीं। जब बोलेनका समय आया तो उसके मुखसे पहला शब्द निकला— 'वासुदेव[२]'। उच्चारण बिलकुल स्पष्ट था और मिठाससे भरा था। लोगोंके लिये यह विस्मयकी बात थी। लोगोंमें यह विस्मय तब ज्यादा बढ़ गया, जब आठ वर्षोंतक यह बालक निरन्तर 'वासुदेव-वासुदेव' जपता चला गया। आँखें बंद करके भगवान्‌को देखता, मुखपर भगवत्प्रेमकी चमक होती और मुखसे 'वासुदेव-वासुदेव'—इस नामका कीर्तन होता रहता। आठ वर्षतक 'वासुदेव' शब्दको छोड़कर और किसी शब्दका उसने उच्चारण नहीं किया।

ऐतरेयकी इस स्थितिने लोगोंमें तो कुतूहल भर दिया और माता-पिताके हृदयमें आनन्द। माता-पिता सोचते रहे कि हमारे कुलमें एक महाभागवतने जन्म लिया है, जो अनेक पीढ़ियोंको तार देगा; किंतु पीछे चलकर यह कीर्तन पिताके लिये चिन्ताका विषय बन गया। आठवें वर्षमें पिताने पुत्रका यज्ञोपवीत-संस्कार कराया और उसे वेद पढ़ाना चाहा, परंतु वह बालक 'वासुदेव'को छोड़कर न कुछ सुनता था और न बोलता ही था। वेदका पढ़ना तो दूर रहा। पिता पढ़ाते-पढ़ाते थक गये। उनके सारे उपाय व्यर्थ सिद्ध हुए। अन्तमें वे इस निश्चयपर पहुँचे कि ऐतरेय जड़ है। इसके बाद वे अपने पुत्रसे बहुत निराश हुए।

विवश होकर उन्होंने दूसरा विवाह किया। इस स्त्रीसे उन्हें संतानोंकी प्राप्ति हुई। ये सभी संतान वेदके पारंगत विद्वान् हुए और कर्मकाण्डमें बहुत ही कुशल। ऋषिकी इन संतानोंकी सर्वत्र पूजा होने लगी। साथ-साथ इनके पिता भी उन लड़कोंको और उनकी माँको भरपूर प्यार और सम्मान देते। धीरे-धीरे ऐतरेय और उसकी माँ—ये दोनों घरमें ही उपेक्षित होते चले गये।

पतिकी उपेक्षाने इतराका जीना दूभर कर दिया। एक दिन भारी हृदय लेकर वह मन्दिरमें जा पहुँची। उसका पुत्र ऐतरेय सारा समय मन्दिरमें ही व्यतीत करता था। उसका एक ही काम था 'वासुदेव-वासुदेव' रटना। उसने पुत्रकी तल्लीनता भंग करते हुए कहा कि 'तुम्हारे चलते हम उपेक्षित हैं और तुम तो उपेक्षित हो ही। अब बताओ हमारे जीनेका क्या प्रयोजन है?'

पुत्रने समझाया कि 'माँ! अब तुम संसारमें आसक्त होती जा रही हो। संसार तो निःसार है, सार केवल भगवान्‌का नाम है। मान और अपमान—ये दोनों ही माया हैं, फिर भी मैं तुम्हारी अभिलाषाको पूर्ण करूँगा। तुम दुःखी न होओ। मैं तुम्हें उस पदपर पहुँचाऊँगा, जहाँ सैकड़ों यज्ञ करके भी नहीं पहुँचा जा सकता'(स्क० पु० मा० कुमा०)।

१-तस्यासीदितरा नाम भार्या साध्वी गुणैर्युता (स्क० पु० माहे० ख० ४२।३०)।

२-वासुदेवेति नियतमैतरेयो वदत्यसौ (लिङ्गपु० २।७।१९)।

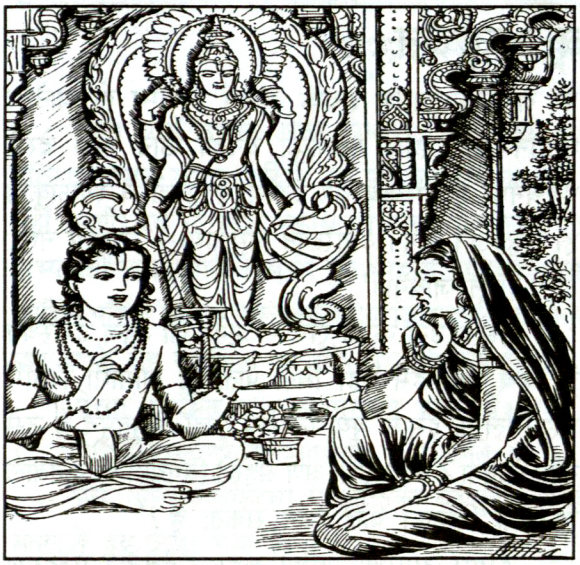

बच्चेका विवेकपूर्ण आश्वासन पाकर माँको बहुत संतोष हुआ। इस बीच भगवान् विष्णु अर्चा-विग्रहसे साक्षात् प्रकट हो गये। भगवान्‌के दर्शन पाकर माता विह्वल हो गयी और अपना जन्म लेना सफल समझने लगी। उस दर्शनका ऐतरेयपर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। वह रोमाञ्चित हो गया। आनन्दसे उसकी आँखोंमें आँसू छलक आये। उसने गद्‌गद-स्वरसे भगवान्‌की वह स्तुति की, जो इतिहासमें प्रसिद्ध है।

भगवान्‌ने ऐतरेयको अपने आशीर्वादसे प्रफुल्लित कर दिया। अन्तमें उसकी माताकी इच्छाकी पूर्ति भी करनी चाहिये, यह सोचकर भगवान्‌ने ऐतरेयको आदेश दिया कि 'तुम अब सभी वैदिक धर्मोंका आचरण करो। सभी काम निष्कामभावसे करो और मुझे समर्पित करते जाओ। माताकी इच्छाकी पूर्तिमें बाधक न बनो। विवाह करो। यज्ञोंद्वारा भगवान्‌की आराधना करो और माताकी प्रसन्नताको बढ़ाओ। यद्यपि तुमने वेदोंका अध्ययन नहीं किया है, फिर भी सम्पूर्ण वेद तुम्हें प्रतिभासित हो जायँगे। अब तुम कोटितीर्थमें जाओ। वहाँ हरिमेधाका यज्ञ हो रहा है। वहाँ जानेपर तुम्हारी माताकी सम्पूर्ण इच्छाएँ पूरी हो जायँगी।'

भगवान्‌के दर्शन और अपने ऊपर उनका स्नेह देखकर इतराका हृदय गद्‌गद हो गया। जिस पुत्रको वह जड़ मानती थी, उसका महान् प्रभाव देखकर वात्सल्यकी जगह उसमें श्रद्धाका भाव भर गया।

भगवान्‌के आदेशके अनुसार माता और पुत्र हरिमेधाके यज्ञमें पहुँचे। वहाँ ऐतरेय बोले—

नमस्तस्मै भगवते विष्णवेऽकुण्ठमेधसे।
यन्मायामोहितधियो भ्रमामः कर्मसागरे॥

इस श्लोकके गम्भीर आशयसे हरिमेधा आदि सारे विद्वान् चमत्कृत हो गये। सभीने ऐतरेयको ऊँचे आसनपर बैठाकर उनकी विधिवत् पूजा की। ऐतरेयने वेदके उस भागको भी निर्भ्रान्त सुनाया, जो वहाँके विद्वानोंको उपस्थित (ज्ञात) थे और वेदके उस भागको भी सुनाया, जो अभी पृथ्वीपर उपलब्ध नहीं थे। हरिमेधाने ऐतरेयसे अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया। सारे विद्वानोंने ऐतरेयकी माताको ऐतरेयसे बढ़कर सम्मानित किया (स्क० पु० मा० कुमा०)।

सायणने अपनी भूमिकामें किसी अन्य कल्पकी रोचक घटना दी है। जब पिताने यज्ञ-सभाके बीचमें ऐतरेयका घोर अपमान किया और उसको झटककर पिङ्गाके पुत्रोंको अपनी गोदमें बैठाया तो माताका हृदय इसको सह न सका। माता तो भगवान्‌को पृथ्वीमाताके रूपमें भजती ही थी। उसने अपनी उसी कुल-देवताका स्मरण किया। पृथ्वीदेवी दिव्यमूर्ति धारण कर उस सभामें आ गयीं। उन्होंने वहाँ एक ऐसा सिंहासन रखवाया, जिसे किसीने कभी देखा न था। उसी दिव्य आसनपर पृथ्वीमाताने ऐतरेयको बैठाया और सबके सामने घोषित किया कि ऐतरेयके पाण्डित्यके समान किसीका पाण्डित्य नहीं है। इसको मैं वरदान देती हूँ कि यह 'ऐतरेय ब्राह्मण' का द्रष्टा हो जाय। वरदान देते ही ऐतरेयको ४० अध्यायोंवाला ब्राह्मण प्रतिभासित हो गया। तभीसे इस ब्राह्मण-भागका नाम 'ऐतरेय ब्राह्मण' पड़ा है।*

* तदानीं खिन्नवदनं महिदासमवगत्य इतराख्या तन्माता स्वकीयकुलदेवतां भूमिमनुसस्मार। सा च भूमिर्देवता दिव्यमूर्तिधरा सती यज्ञसभायां समागत्य महिदासाय दिव्यं सिंहासनं दत्त्वा तत्र एनमुपवेश्य सर्वेष्वपि कुमारेषु पाण्डित्याधिक्यमवगम्य एतद् (ऐतरेय) ब्राह्मण प्रतिभासमानरूपं वरं ददौ। तदनुग्रहात् तस्य मनसा चत्वारिंशदध्यायोपेतं ब्राह्मणं प्रादुरभूत्।